प्रथम अध्याय

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद का सैद्धांतिक संदर्भ

भाषा के जन्म से पहले जब संकेतों का सहारा लिया जाता था तभी से अनुवाद का विकास भी देखने को मिलता है। अनुवाद को व्यापक रुप में देखें तो वक्ता के संकेतों को श्रोता द्वारा समझना ही अनुवाद है। किसी भी समाज व संस्कृति का विकास अनुवाद के बिना संभव नहीं है। आज के सिमटते हुए संसार में संप्रेषण माध्यम के रुप में अनुवाद अपना व्यापक योगदान दे रहा है। एक भाषाभाषी समुदाय में संपर्क तथा विचार-विमर्श के लिए भाषा का व्यवहार किया जाता है परंतु दो भाषाभाषी समुदाय के बीच विचारों के आदान-प्रदान के लिए अनुवाद की सहायता लेनी ही पड़ती है।

"सभ्यता के उद्भव और विकास में मानव संप्रेषण का इतिहास छिपा हुआ है और संप्रेषण के मूल में अनुवाद की धारणा है। भाषिक दिक्काल द्वारा उत्पन्न रिक्तता को दूर करने वाले अनुवाद संभवत: इसलिए दुनिया के सबसे पुराने पेशेवरों में से एक हैं।"[1]

इस आधार पर हम यह कह सकते है कि संप्रेषण मानव समाज का आधार है तथा अनुवाद संप्रेषण के व्यापक रुप को संभव बनाता है।

भारत एक बहुभाषिक देश है तथा यहाँ अनुवाद का प्रचलन प्राचीनकाल से ही चलता आ रहा है। आधुनिक युग संचार क्रांति तथा सूचना प्रौद्योगिकी का युग है, इस संदर्भ में अनुवाद की प्रासंगिकता एवं उपादेयता आज असंदिग्ध है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्रों में जिसप्रकार निरंतर उन्नति प्रगति के कारण संपूर्ण विश्व सिकुड़ता चला जा रहा है। वास्तव में अनुवाद एक सांस्कृतिक सेतु का काम करता है। एक बहुआयामी, बहु-दिशागामी ऐसा सेतु जिसके ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं से अनेक भाषाई मार्ग खुलते, प्रशस्त होते तथा निर्बाध आवागमन आदान प्रदान की दिशाएं उजागर करते हैं।

[1] डॉ. रमण सिन्हा, अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन, पृ. 13

प्राचीनकाल में अनुवाद साहित्य तथा राजाओं तक सीमित था, परंतु आज ये सीमाएं टूट चुकीं हैं। विभिन्न राष्ट्रों की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विरासत का आदान-प्रदान अनुवाद द्वारा ही संभव है। विश्व के विभिन्न सदियों के बीच जो परस्पर आदान-प्रदान हुआ है वह अनुवाद के माध्यम से ही हुआ है। भारतीय साहित्यिक विरासत के विस्तार को अनुवाद ही संभव बना रहा है । नवजागरण काल में पूरे विश्व को सही तौर पर अनुवाद का सहारा लेना ही पड़ा।

सुरेश गौतम जी लिखतें हैं –**"अनुवाद के बिना किसी भी देश की साहित्य संपदा का विनिष्ट होना निश्चित है। अंतरराष्ट्रीय मंच पर दो भाषाओं के बीच अनुवाद ने ही सेतुओं का निर्माण किया है। बहुभाषिकता निश्चित रूप से किसी भी देश की समृद्धि का मापक यंत्र है, भाषा और सांस्कृतिक वैविध्य न केवल अनुभव पाटों को चौड़ा करता है, अपितु उदारता और सहिष्णुता के द्वार भी खोलता है। अनेक भाषाओं को जानना सरल नहीं है और सभी भाषाओं का ज्ञाता कोई एक व्यक्ति नहीं हो सकता । एक-दूसरे पर निर्भरता का कारण व्यक्ति को अनुवाद का सहारा लेना ही पड़ता है।"**[2] भारतीय नागरिक के लिए अनुवाद परंपरा जन्मजात है। एक समय था जब देश में एक ही भाषा से उसी भाषा में अनुवाद हुआ करते थे। ये अनुवाद व्याख्या या टीका के रुप में अधिक मान्य थे।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार **"अनुवाद की भारतीय परंपरा वेदों में खोजना कठिन है, फिर भी, अनुमानत: वैदिक युग में अनुवाद उतना ही महत्वपूर्ण रहा होगा जितना परवर्ती युग में। लौकिक संस्कृत के युग में अंत:भाषिक, अंतरभाषिक और अंत:प्रतीकात्मक अनुवाद प्रणालियों का प्रचलन था।"**[3]

व्यवहारिक रूप में अनुवाद अत्यंत प्राचीन व व्यापक है परन्तु अनुवाद सिद्धांत अभी इतने व्यापक तथा प्राचीन नहीं है। अभी कुछ दशकों में ही अनुवाद के सिद्धांत निर्माण पर कार्य हुए हैं, हर सिधांत की तरह अनुवाद सिद्धांत भी हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा अधिक हैं।

[2] गौतम सुरेश, स्मारिका दसवां हिंदी सम्मलेन पृ.206

[3] डॉ. नगेन्द्र, अनुवाद विज्ञान सिद्धांत एवं अनुप्रयोग, पृ. 7

अनुवाद की एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है, विद्वानों ने अपने–अपने विचारों में इसको व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। अनुवाद की कुछ व्याख्या निम्नलिखित है -

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव जी अनुवाद को दो संदर्भों में देखा है - **"व्यापक संदर्भ में अनुवाद को प्रतीक सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। इस दृष्टि से मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भाषा का प्रतीकांतरण अनुवाद है। अपने सीमित अर्थ में अनुवाद भाषा सिद्धांत का संदर्भ लेकर चलता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि कथ्य का भाषांतरण अनुवाद है।"**[4]

अनुवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने वाली गार्गी गुप्त जी ने अनुवाद प्रक्रिया को कुछ इस प्रकार व्याख्यायित किया है, "**अनुवाद प्रक्रिया के दो मुख्य अंग होते हैं, अर्थबोध और व्याकरण सम्मत भाषा में स्पष्ट संप्रेषणा। इसीलिए अनुवादक की निष्ठा दोमुखी होती है- मूल रचनाकार के प्रति अर्थबोध की दृष्टि से और पाठक के प्रति शुद्ध तथा सुबोध संप्रेषण की दृष्टि से। मूल रचनाकार की जो संकल्पनाएं अथवा स्थितियां अनूदित रचना के पाठक के लिए अज्ञात, अस्पष्ट या दुरुह हों, उनकी व्याख्या, स्पष्टीकरण, अंतर्संबंधों का विवरण देना अत्यावश्यक है। यदि हम पाठक को मूल रचना की भूमि में सिद्धांत ले जाना चाहते हैं तो उसका वह मनोहर स्वरुप यथावत उसके मन में प्रतिबिंबित होना चाहिए।**"[5]

भोलानाथ तिवारी ने अनुवाद को प्रतीकांतरका एक भेद माना है-"**अनुवाद के बारे में मेरे विचार परंपरागत विचारों से थोड़े से भिन्न हैं। मैं अनुवाद या भाषांतर को प्रतीकांतर का एक भेद मानता हूँ। 'प्रतीकांतर' का प्रयोग मैं विशेष अर्थ में कर रहा हूँ। हम जानते हैं कि विचार किसी न किसी प्रकार के प्रतीक द्वारा ही व्यक्त किए जाते हैं। भाषा में ये प्रतीक शब्द होते हैं। इसी प्रकार यह चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला आदि में भी भावों या विचारों की अभिव्यक्ति के लिए तरह-तरह के प्रतीकों का प्रयोग होता है। इन**

[4] डॉ.श्रीवास्तव रवीन्द्रनाथ, अनुवाद सिद्धांत और समस्याएं, पृ.9

[5] डॉ. गार्गी, अनुवाद पत्रिका अंक 58, पृ. 27

प्रतीकों का परिवर्तन ही प्रतीकांतर है। दूसरे शब्दों में, एक प्रतीक (या प्रतीक वर्ग) द्वारा व्यक्त विचार (या विचारों) को दूसरे प्रतीक (या प्रतीक वर्ग) द्वारा व्यक्त करना प्रतीकांतर है।"[6]

प्रतीकांतर के इन्होंने तीन प्रकार माने हैं :

1. शब्दांतर

2. माध्यमांतर

3. भाषांतर

इस प्रकार से हम कह सकते है कि अनुवाद अपने व्यापक रूप में प्रतीकांतर ही है तथा जिस स्थिति में अनुवाद एक भाषिक प्रतीक से भाषेतर प्रतीक में किया जाता है, उसे अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद कहते हैं। वहीं भोलानाथ तिवारी ने इस अनुवाद को माध्यांतर की संज्ञा दी है। अत: उपर्युक्त व्याख्याओं से यह स्पष्ट होता है कि अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद को समझने के लिए अनुवाद के प्रकारों पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

पाश्चात्य अनुवाद वैज्ञानिक रोमन याकोत्सन ने प्रतीक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में किसी भाषिक पाठ के प्रतीकांतरण को तीन संदर्भों में देखा है तथा उन्हीं के आधार पर अनुवाद चिंतकों ने उसे व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव जी ने अनुवाद को निम्नलिखित तीन संदर्भों में देखा जा सकता है :

1. अंत:भाषिक अनुवाद (अन्वयांतर)

2. अंतरभाषिक अनुवाद (भाषांतर)

3. अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद (प्रतीकांतर)[7]

[6] डॉ. भोलानाथ तिवारी, अनुवाद विज्ञान, पृ. 12

[7] डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव और अन्य, अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ, पृ. 5,6

भोलानाथ तिवारी ने प्रतीकांतर के प्रकार के रुप में माध्यमांतर को लिया है, इसका उल्लेख मैं पहले ही कर चुकी हूँ, इसे हम अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद कह सकते हैं।

डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर ने माध्यम के आधार पर अनुवाद के तीन प्रकार माने है:- प्रतीक प्रकार, भाषा प्रकार, लेखन प्रकार

इनमें से इन्होंने 'प्रतीक प्रकार' के अंतर्गत तीन भेद माने हैं।

1. अंतभाषिक

2. अंतर भाषिक

3. अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद [8]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद, अनुवाद का एक प्रकार है जिसे विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार में प्रस्तुत किया है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इसे मध्यमांतर, डॉ. श्रीवास्तव तथा प्रो. भोलानाथ तिवारी जी ने प्रतीकांतर तथा डॉ. विश्वनाथ अय्यर ने इसे प्रतीक प्रकार के अंतर्गत अंतरप्रतीकात्मक की संज्ञा दी है।

अतः अनुवाद को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं, निम्नलिखित भेदों को भूमिका में स्पष्ट किया जा चुका है।

अंतभाषिक अनुवाद

अंतर-भाषिक अनुवाद

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद

[8] डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर, अनुवाद कला, पृ. 25

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद (सिनेमाई अनुवाद के संदर्भ में)

अंतरप्रतीकात्मक अनुवादों में दो प्रकार की प्रतीक व्यवस्थाओं में अनुवाद होता है। यूँ तो अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद चित्रों, नटों, नृत्य, संगीत आदि के माध्यम से भी होता है परंतु यहाँ हम अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद सिनेमाई अनुवाद के विशेष संदर्भ में ले रहें हैं अर्थात् इसमें किसी कहानी या उपन्यास का फिल्म या टी.वी. के दृश्य बिंबों द्वारा प्रतीकांतर किया जा सकता है। उपन्यास या साहित्य भाषिक प्रतीक व्यवस्था में होंगे तथा उस पर आधारित फिल्म भाषेत्तर प्रतीक व्यवस्था में होगी। यह अनुवाद सिद्ध करता है कि कथ्य और अभिव्यक्ति पर आधारित प्रतीक व्यवस्था की वास्तविक सत्ता उसकी प्रतीकात्मकता में होती है न कि उसके मात्र कथ्य और अभिव्यक्ति पक्ष में।

व्यापक रुप से देखें तो चित्रों को देखकर समझा हुआ अर्थ भी प्रतीकांतरण ही है, "Intersemiotic translation involves translation between two different media for example, Form the verbal medium into the musical medium, From the verbal medium into the cinematographic medium, and so on, This later category made it possible for different sign system to be examined through the prism of translation studies."[9]

अर्थात् दो विभिन्न माध्यमों या प्रतीक व्यवस्थाओं के बीच अनुवाद को अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद कह सकते हैं। इस अनुवाद ने सिनेमा और साहित्य को नजदीक लाया है। यहाँ उल्लेखनीय है,

"अनुवाद वह रथ है जिस पर सवार होकर ज्यादा से ज्यादा दर्शकों तक पहुंचा जा सकता है।"[10]

[9] Nilce M. Pereia, Book Illustration as intersemiotic Translation : Pictures Translation Words, University of sao paulo sao paulo Brazil

[10] डॉ. गार्गी गुप्त, अनुवाद पत्रिका, अंक 104 संपादकीय पृष्ठ

प्रतीकों का सहारा लेने से परंपरा को संप्रेषित करने का दायरा एकाएक काफी विकसित हो गया है। साहित्य और सिनेमा में शब्द और दृश्य अभिव्यक्ति रुप का संबंध है। इन दोनों माध्यमों का अभिव्यक्ति के स्तर पर भी आपस में रूपांतरण आरंभ हुआ। साहित्य पर आधारित चित्रकला का बहुत विकास हुआ साथ ही वह प्रशंसनीय भी रहा। आज भी उज्जैन का कालिदास समारोह इसकी मिसाल है।

भावों की अभिव्यक्ति के लिए शब्द एक माध्यम है तो वहीं दृश्य भाषा एक अलग माध्यम हैं। इस अनुवाद में भाव एक माध्यम से दूसरे माध्यम में अनूदित होकर नए मार्ग से अभिव्यक्त होते हैं, दृश्य माध्यम में शब्द के अनुवाद या रूपांतरण को समझने के लिए दोनों माध्यमों की संरचनात्मक प्रकृति को समझना आवश्यक होता है।

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद के अनुवादक को अर्थात् पटकथा लेखक को दोनों भाषाओं पर अच्छी पकड़ और विषय ज्ञान के साथ-साथ फिल्म संबंधी तकनीकी ज्ञान भी होना जरुरी है। रचनात्मक कल्पना उसकी अपेक्षित आवश्यकता है। इनके अलावा उसके समझ सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों के अनुवाद जैसे पक्ष भी चुनौतीपूर्ण होते हैं।

अंतरप्रतीकात्मक फिल्मांकन अनुवाद करने का मुख्य उद्देश्य पाठक वर्ग की सीमितता से दर्शक वर्ग की व्यापकता को पकड़ने की कोशिश है। मानव का दृश्य के प्रति आकर्षण का कारण आदिम हो सकता है क्योंकि विचार दृश्य से भी जुड़ता है और शब्द से भी। संभवत: दृश्य से जुड़ने में उसे सुविधा होती है। अत: दृश्य से तादात्मय जल्दी हो जाता है। दृश्य से जुड़ने की सुविधा दर्शक को सरलता की ओर ले जाती है और वह शब्द की जटिलता को आसानी से समझ लेता है। हम कह सकते हैं कि शब्द संकेतात्मक दृश्यों का सहारा पाकर और अधिक सार्थकता ग्रहण करते है और दर्शक से जल्दी जुड़ते हैं।

कला की अलग-अलग विधाओं का अलग-अलग स्वरुप होता है। न केवल उनकी रचना प्रक्रिया अलग होती है बल्कि उनके तत्व भी अलग होते है। उपन्यास, कहानी तथा नाटक आदि विधाओं की कथाओं को अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद की सहायता से फिल्म पटकथा में अनूदित किया जा रहा है। भारत में प्राचीनकाल से ही प्रेक्षागृहों में नाटक खेले जाने की प्रथा रही।

'पृथ्वी थियेटर के आने के बाद साहित्य की कथाओं का रूपांतरण तथा प्रतीकांतरण फिल्म जगत में होने लगा था। पुरानी हिंदी ब्लैक एंड वाईट फिल्मों में इसके काफी उदाहरण देखने को मिलते हैं। जैसे फणीश्वर नाथ रेणु प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार के उपन्यास 'तीसरी कसम' पर फिल्म बनी। गुलशन नंदा उपन्यास 'झील के उस पार तथा नीलकमल' का भी फिल्मांतरण हुआ। इसी प्रथा में पंजाब की विख्यात उपन्यासकार अमृता प्रीतम के 'पिंजर' उपन्यास का फिल्मांतरण हुआ है। हालांकि यह रूपांतरण हिंदी उपन्यास को आधार लेकर किया गया है. अमृता प्रीतम को हिंदी साहित्य का एक अमूल्य मोती माना जाता है। क्योंकि उन्होंने जितना योगदान पंजाबी साहित्य में दिया, उत्तर ज्यादा हिंदी में दिया। पिंजर के फिल्मांतरण जिसका विश्लेषण मैं इस शोध में कर रही हूँ। प्रतीक सिद्धांतों की दृष्टि को ध्यान में रखकर उपन्यास तथा उसके फिल्म रूपांतरण में प्रयुक्त प्रतीकों का विश्लेषण अनुवाद की दृष्टि से किया जा सकता है।

साहित्य पर आधारित फिल्में आज भी बन रही है जो एक ज्वलंत समस्या को एक बड़े वर्ग तक पहुंचा रही हैं-जैसे महाश्वेता देवी के उपन्यास हज़ार चौरासी की माँ पर भी अनुवाद प्रक्रिया का सहारा लेकर फिल्म बनाई गई है। चेतन भगत भारतीय पाठक वर्ग के प्रिय अंग्रेजी लेखक के उपन्यास टू स्टेटस आदि पर भी फिल्म बन रही है। अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद का इस दिशा में बढ़ता प्रयोग प्रतीकांतरण की प्रक्रिया के लिए आवश्यक सामान्य नियमों के शोध की आवश्यकता को बढ़ा रहा है।

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद एक कला -

अनुवाद एक कला है तथा अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में कलात्मकता की मांग अपेक्षाकृत अधिक होती है। किसी भाषा में रचित रचना का किसी दूसरी भाषा में रूपांतर करते समय मूलभाषा के सौंदर्य की रक्षा करनी होती है। इस प्रयत्न में अनुवादक को मूल लेखक के परिवेश, दृष्टिकोण तथा उसके देश, काल और स्थिति का यथार्थ ज्ञान आवश्यक हो जाता है। अनुवाद किसी सृजनात्मक कृति का फोटोग्राफ या प्रतिबिंब नहीं होता। वह कला से युक्त होता

है। भाषा केवल कलेवर होती है, जबकि अनुभूतियां उस कला की आत्मा। अत: किसी कृति के भाषा रुपी बाह्य आवरण के कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं है अपितु उसके आत्मगत सौंदर्य को आकर्षक एवं सरस शैली में प्रतिबिंबित करना उतना ही आवश्यक है।

किसी साहित्यिक कृति का फिल्मांतरण करते समय निर्देशक या फिल्मकार को मूल लेखक के दृष्टिकोण परिवेश, देश काल वातावरण व स्थिति का यथार्थ ज्ञान आवश्यक हो जाता है। उसका अर्थ यह हुआ कि जैसे चित्रकार एक कलाकार होता है, और चित्र बनाना एक कला है, उसी प्रकार अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद भी एक कला है तथा फिल्मांतरण या फिल्मकार में कलात्मकता की मांग अपेक्षाकृत अधिक होती है। निसर्ग के सौंदर्य को जब चित्रकार अपनी प्रतिभा के बल पर अपनी कृति में उतारता है तो वहाँ भी एक विचार का, एक सौंदर्य का अनुवाद, रंगों के माध्यम से होता है। वह जितनी मात्रा में वास्तविकता व मूल, जो नैसर्गिक है उसको उतारता है, उतनी ही मात्रा में उनका चित्र सफल होता है तथा कहीं-कहीं मूल से कहीं ज्यादा उसकी अनुकृति वैभवपूर्ण हो जाती है। इसी में कला की सार्थकता निहित है।

कहीं-कहीं साहित्य पर आधारित फिल्मीकरण की इस प्रक्रिया को बाजारीकरण तथा उत्तर आधुनिकता ने भी घेरा है। जैसे देवदास उत्तर आधुनिकता की विचारधारा से ऊपज एक फिल्मांकन है, जो एक महान साहित्यिक रचना का आड़ लेकर रचनात्मक संभावनाओं का बाजारीकरण करती है। यह सृजनशीलता नहीं है। अब तक शरतचंद्र के इस उपन्यास पर तीन हिंदी फिल्में बन चुकी हैं। इसमें न तो मौजूदा समाज को समझने की कोशिश है और न बीसवीं सदी के उन आरंभिक दशकों के लेखक को जिन्होंने देवदास की रचना की।

1.1 अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद और अनुवाद सिद्धांत

जैसा कि हम अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में प्रतीक की महत्ता पर पहले ही विचार कर चुके हैं। प्रतीक सिद्धांत को समझना अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद को समझने के लिए आवश्यक है। प्रतीक सिद्धांत की मूलभूत इकाई प्रतीक है। भाषिक प्रतीक भाषा का वह अंग है जो किसी वस्तु के विभिन्न स्थान पर प्रयोग में लायी जाती है। प्रतीक व्यवस्था जिसके द्वारा किसी वस्तु का एक दूसरा अर्थ निकलता है। भाषिक प्रतीक जिस वस्तु की और संकेत करता है वह केवल भौतिक वस्तु नहीं होती है। अपितु वह उस वस्तु के प्रति उस भाषायी समाज के व्यक्तियों का भावबोध भी होता है। भाषिक प्रतीक मूल रूप से बोधात्मक होता है परंतु इसके साथ ही साथ इसका सामाजिक पक्ष भी चलता रहता है।

प्रतीक सिद्धांत

भाषा विज्ञान की शाखा अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान अनुवाद प्रतीक सिद्धांत के आधार पर जुड़ता है। अनुवाद मूल्यांकन तथा अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद की प्रक्रिया में अनुवाद सिद्धांत में से प्रतीक सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनुवाद की व्यापक परिभाषा देखें तो रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का कथन उल्लेखनीय होगा कि "**मूल भाषा के पाठ का प्रतीकांतरण ही अनुवाद है।**" मूल भाषा का पाठ अपनी प्रकृति में प्रतीकबद्ध होता है तथा अनुवाद को उन प्रतीकों को ग्रहण करना होता है। विद्वानों ने भाषिक प्रतीक के त्रिवर्गीय संकेतन संबंध माने हैं। डॉ.रवीन्द्रनाथनाथ श्रीवास्तव के अनुसार, "प्रतीक की इस अवधारणा को त्रिवर्गीय संकेतन संबंधों के आधार पर समझा जा सकता है। संकेतन व्यापार में तीन इकाईयों का संयोग होता है :

1. संकेतिक वस्तु (Referent)

2. संकेतार्थ (Reference)

3. संकेतक प्रतीक (Sign)[11]

इन तीनों इकाइयों के संबंधों को निम्नलिखित आरेख द्वारा समझा जा सकता है।

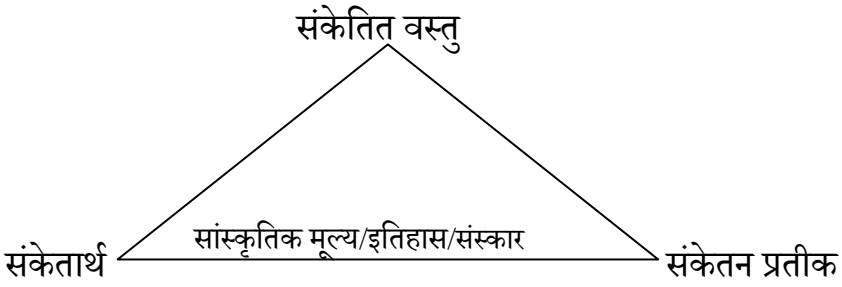

इसे हम इस प्रकार भी समझ सकते है कि संकेतिक वस्तु भौतिक इकाई है जैसे वास्तविक गंगा नदी या गुलाब का फूल संकेतार्थ हमारे मन में स्थित उस इकाई की संकल्पना है। यह संकल्पना व्यक्ति को अपने भाषायी समाज से प्राप्त होती है। संकेतन प्रतीक संकेतार्थ को अभिव्यक्त करता है।

प्रतीक का सीधा संबंध संकेतित वस्तु से नहीं होता। किसी भी वस्तु एक संकेतार्थ मतलब संकेतित अर्थ होता है। संकेतार्थ के साथ उसका भाषायी समाज जुड़ा होता है तथा जब संकेतार्थ के साथ सांस्कृतिक मूल्य, इतिहास, सामाजिक संस्कार आदि तत्व मिलते हैं तो संकेतन प्रतीक का निर्माण होता है। उदाहरण स्वरुप गंगा सुनते ही हमारे मष्तिष्क में एक छवि बनती है। बहते हुए पानी अर्थात नदी की। परंतु चूँकि हम हिंदी भाषी है तथा हमारे भाषायी समाज में गंगा नदी के रुप में ही नहीं बल्कि पवित्रता, शुद्धता के प्रतीक रूप में रूढ़ है तो हमारे मानस पटल पर संकेतार्थ के साथ जुड़ जाता है तथा इसका प्रयोग भी इसी प्रकार हम करते हैं जैसे - "**किसी तरह बिटिया का ब्याह हो जाए समझो गांगा नहा लिए**" यहाँ गंगा नदी नहीं है, बोझ हल्का करने वाली स्त्रोत स्विनी रुप में प्रयुक्त हुई है। इसके अनुवाद में प्रतीक का संकेतन प्रतीक संदर्भ समझना आवश्यक हो जाता है।

[11] डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान, सिद्धांत एवं प्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण 2000, पृ. 108

प्रसिद्ध प्रतीकशास्त्री पीयर्स के 'प्रतीक सिद्धांत को आधार बनाकर विद्वानों ने उसकी अलग-अलग व्याख्या की है। जुलियों जेहा ने अपने लेख में पीयर्स के सिद्धांत की व्याख्या कुछ इस प्रकार की है-

"A Sign" says peirce, "stands for something to the idea it produces or modifies. That for which it stands is called its object. That which it conveys its meaning and the idea its gives rise, As interpretant. The sign signifies in three ways it is a sign to a mind that experiences and interprets it. It is a sign for some object that it replaces in that mind it is sign according to somepoint of view or quaility that relates it to the object. The relational nature of peircean sign makes it impossible for any representation to absolute if merely takes in a given context a validity that may not subsist in another context the interpretent the meaning of "good" to Athens was not the same interpretent of "good" to sparta. "[12]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रतीक वह वस्तु है जो हमारे मानस पटल पर किसी वस्तु के गुण से संबंधित विचार का निर्माण करती है। इन्होंने भी इसे तीन संदर्भों में देखा है।

जैसा कि हम जानते हैं कि मूलपाठ अपनी प्रकृति के आधार पर प्रतीकबद्ध रहता है अगर हम संपूर्ण पाठ को भाषिक प्रतीक मानें तो डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार इस आधार पर अर्थ के तीन पक्ष स्पष्ट रूप से दिखते हैं, जिनके अध्ययन के लिए तीन विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों की भी संकल्पना की जा सकती है :

पक्ष 1 व्याकरणिक (Syntactic) : प्रतीक+प्रतीक

पक्ष 2 शब्दार्थी (Semantic) : प्रतीक+वस्तु

[12] Intersemiotic translation, The peircean basis Julilo JEHA-UFMG, Research Paper

पक्ष 3 संकेत प्रयोगार्थी (Pragmatics) प्रतीक+प्रयोग[13]

अर्थात् प्रतीक के अर्थ के तीन पक्ष हो सकते हैं। प्रतीक और प्रतीक संबंध से जो अर्थ ध्वनित होता है। उसे व्याकरणिक अर्थ कहा जाता है। उदाहरण स्वरुप -

राम ने दरवाजा नहीं खोला।

इसमें **राम, दरवाजा** तथा **खोलना** तीन प्रतीक है:

जो जुड़कर एक व्याकरणिक अर्थ दे रहें है।

शब्दार्थी पक्ष शब्दकोश में रहता है। उदाहरण के लिए **गुलाब एक फूल जो लाल, सफेद, गुलाबी, बैंगनी** विभिन्न रंगों में एक अलग विशेषता लिए होता है।

संकेत प्रयोगार्थी पक्ष प्रतीक और प्रयोक्ता के संबंधों को अपना आधार बनाता है। वस्तुत: अर्थ का यह भाषेतर पक्ष होता है जो इतिहास, सामाजिक बोध, सांस्कृतिक मूल्य से जुड़कर प्रयोग को सार्थकता देता है। यह वह पक्ष है जो 'प्रेम के गुलाब' के फूल को देने की भाववृत्ति को स्पष्ट करता है। यदि कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को एक गुलाब का फूल उपहार में भेंट करता है तो इस व्यापार में गुलाब का फूल संकेतक है और भेंटकर्ता की भाववृत्ति संकेतार्थ है।

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी ने संकेतार्थ में निहित अर्थ की अगाध संभावनाओं को देखा है। अर्थ की इन संभावनाओं को इन्होंने मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया है:

1. बोधात्मक अर्थ -

यह कोशगत अथवा संकल्पनात्मक अर्थ है। इससे वस्तु या पदार्थ का मूलभाव या उसकी जातीय और विशिष्ट संकल्पना मन में उभरती है और वह यथार्थ वस्तु के रुप में दिखाई देती है। जैसे-'कमल' या 'घोड़ा' शब्द में एक प्रकार के फूल या पशु का भाव उठता है।

[13] डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान, सिद्धांत एवं प्रयोग, पृ. 108

2. संरचनात्मक अर्थ -

इसका आधार भाषिक संरचना है। इसमें शब्द या वाक्य की संरचना से अतिरिक्त अर्थ का भी द्योतन होता है जैसे- 'जलज' और 'पंकज' शब्दों में 'कमल' पुरुष की जातीय संकल्पना के साथ-साथ जल से उत्पन्न हुआ अर्थात् मोहमाया से मुक्त और 'पंक में उत्पन्न हुआ' अर्थात् 'गुदड़ी का लाल' का भाव भी उत्पन्न होता है। जो एक अतिरिक्त अर्थ है।

3. सामाजिक अर्थ -

इसका संबंध सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था अथवा परिवेश से जुड़ा हुआ है। वह यथार्थ वस्तु भिन्न अर्थ प्रदान करता है। जैसे तू, तुम, आप मध्यम पुरुष सर्वनाम के प्रयोग से वक्ता तथा श्रोता के सामाजिक संबंधों का परिचय मिलता है। किसी मृत व्यक्ति के दाह संस्कार अथवा फूल चुनना या फूल प्रवाहित करना अभिव्यक्तियों में सांस्कृतिक परिवेश निहित रहता है।

4. सांस्थानिक अर्थ –

यह लाक्षणिक और व्यंजनापरक अर्थ है। इसमें ऐसे अर्थ की व्यंजना होती है जिसका समाहार मूल अर्थ में नहीं हो सकता है. जैसे (1) अरे; मोहन तो शेर है, (2) उसका दिमाग ऊँचा है। जैसी अभिव्यक्तियों में शेर 'बहादुरी' का और ऊँचा 'अहंकार' का अर्थ व्यंजित होता है।[14]

इस प्रकार से दोनों ही विद्वानों ने अपनी-अपनी शैली में प्रतीक के अर्थपक्ष को उद्घाटित किया है। प्रो. गोस्वामी की व्याख्या अधिक सरल व स्पष्ट है तथा डॉ. श्रीवास्तव की व्याख्या तकनीकी है परंतु दोनों ने एक ही कथ्य पर बल दिया है। इनके आधार पर हम कह सकते हैं कि अर्थ का मूल वाच्यार्थ ही होता है जो वास्तविक संकल्पना है। संकेतार्थ में मुख्यत: दो अर्थ निहित होते हैं। एक बाह्यजगत की वस्तुओं का कोशजगत अर्थ तथा दूसरा अन्य संदर्भों में अतिरिक्त अर्थ।

[14] प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ. 21, 22

भाषिक प्रतीक दैनन्दिन व्यवहार तथा सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ के साथ बंधा होता है। भाषिक प्रतीक के प्रयोग के साथ वक्ता और श्रोता का व्यवहार भी प्रभावित होता है और उसके अर्थ को समझने का एक आधार यह भी है। हर प्रतीक का संबंध अपनी व्यवहारपरक अनुक्रिया से होता है, जो संदेश के प्रभावकारी अर्थ को बताते हैं। किसी अंधे व्यक्ति को अंधा न कहकर 'सूरदास' नाम से पुकारना इसके व्यवहारपरक अर्थ को उजागर करता है। अनुवाद करते समय इसका खास ध्यान रखना पड़ता है कि धार्मिक तथा सांस्कृतिक प्रतीक व शब्दावली व्यवहारपरक अर्थ लिए होते हैं।

त्रिवर्गीय संकेतन संबंधों से दो भिन्न प्रतीक व्यवस्थाओं के द्वारा दो भिन्न रूपों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी के अनुसार,"कथ्य को समान रुप में ग्रहण कर उसे दो भिन्न भाषिक प्रतीक व्यवस्थाओं द्वारा दो भिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है।"[15]

1. भाषिक प्रतीक

अभिव्यक्ति ⟷ कथ्य ⟷ अभिव्यक्ति

2. भाषिक प्रतीक

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में यह दूसरी भाषिक प्रतीक व्यवस्था के स्थान पर भाषेतर प्रतीक व्यवस्था में होती है।

अत: हम कह सकते हैं कि अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद की प्रक्रिया तथा मूल्यांकन में अनुवाद विज्ञान तथा भाषा विज्ञान दोनों का सहयोग होता है। अनुवाद भाषिक प्रतीकों का वह व्यापार है जिसमें एक भाषा में संप्रेषित अनुभेदों को दूसरी भाषा में संप्रेषित किया जाता है। इसमें दो भाषाओं का अपना सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक संदर्भ और परिवेश होते हैं जो प्राय:

[15] प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, पृ.22

एक समान नहीं होते। हर भाषा की अपनी अगाध शक्ति और जातीय संवेदना होती है। अनुवाद में इन भाषाओं के विशिष्टताओं पर ध्यान देना होता है।

जैसा कि हम पहले ही अनुवाद के प्रकार के रुप में अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद को देख चुके हैं। अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में एक भाषिक प्रतीक होता है तो दूसरा भाषेत्तर प्रतीक। चित्रकला, नृत्यकला, संगीतकला आदि में विचारों की अभिव्यक्ति भाषेत्तर प्रतीकों में होती है। इन्हें हम अनुवादक की श्रेणी में भी रख सकतें हैं क्योंकि ये भाषिक प्रतीकों का रूपांतरण भाषेतर प्रतीकों में करते हैं। सामान्यत: उपन्यासादि का इन कलाओं में रूपांतरण होता है। मंच पर मैथिलीशरण गुप्त की यशोधरा काव्य की पंक्तियाँ को जब नृतकी अपनी नृत्यकला से उद्घाटित करती है तो वहाँ उसके हाव-भाव, संकेत, हाथ की कलाई, भौ-विकृतियाँ आदि प्रतीकों का, संकेतों का निर्माण करती हैं।

इसी प्रकार किसी मार्ग पर 'खतरे की चेतावनी' भाषा के माध्यम से देने की बजाय 'खोपड़ी का चिह्न' लगाया जाता है। सड़क पर वाहनों की व्यवस्था के लिए लालबत्ती और हरीबत्ती का प्रयोग, ये सभी भाषेतर प्रतीक हैं। लेखक के विचारों को कहानी, उपन्यास, नाटक से फिल्म के दृश्यबिंब द्वारा प्रतीकांतरण किया जा सकता है - उदाहरण के लिए 'पिंजर', 'तीसरी कमस', 'मैला आँचल', 'सारा आकाश', 'गोदान' आदि। विश्व के सभी भाषा साहित्य से आज फिल्मांकन के रूप में अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद किया जा रहा है। अनुवाद का यह प्रकार इस तथ्य की ओर संकेत देता है कि कोई भी प्रतीक कथ्य और अभिव्यक्ति की समन्वित इकाई है तथा उसकी वास्तविकता अर्थवत्ता उसके संकेतन व्यापार में होती है।

समतुल्यता का सिद्धांत

अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में अनुवादक को तीन सोपानों से गुजरना पड़ता है- विश्लेषण, अंतरण तथा पुनर्रचना। स्त्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अर्थगत अभिव्यक्तियों के अनुवाद में भाषिक, शैलीगत, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा सौन्दर्यपरक स्तरों पर आने वाली

समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी समस्याओं में अनुवादक अर्थ की निकटत्तम सादृश्यता के आधार पर शब्दों का चयन करता है, इसे ही समतुल्यता का सिद्धांत कहा जाता है। कैटफ़र्ड ने अनुवाद को समतुल्यता के सिद्धांतों के आधार पर प्रतिस्थापन कहा है। दो भाषाओं की संरचनाएं भिन्न भिन्न होती हैं इसलिये अनुवाद समरूपी न होकर समतुल्य होता है। इसे प्रो. दिलीप सिंह ने इसकी व्याख्या एक सुन्दर उदहारण से की है-"अंगेरजी के वाक्य I met her का सीधा और सरल हिंदी अनुवाद है- मैं उससे मिला, पर यह वाक्य समरूप न होकर समतुल्य है। यह समरूप इसलिए नहीं है कि संरच्जना के धरातल पर मूल वाक्त्य में शब्दक्रम इस प्रकार है..संज्ञा+क्रिया+सर्वनाम, जबकि अनुदित वाक्य में ये शब्द क्रम संज्ञा+सर्वनाम+क्रिया हो गया है इसी प्रकार अन्य भेद भी देखें जा सकते हैं-अंग्रेजी वाक्य में सर्वनामके द्वारा लिंग भेद व्यक्त है..यथा, स्त्रीलिंग, जबकि अनुदित वाक्य में यह पता नहीं चलता कि जिससे मिला गया वह स्त्री लिंग है या पुल्लिंग। इसी प्रकार हिंदी वाक्य द्वारा एक अतिरिक्त अर्थ भी ध्वनित है कि जिससे मिला गया वह दूरवर्ती है, निकटवर्ती नहीं क्योंकि वह 'उससे' है न कि 'इससे'। यदि अनुवाद सही प्रतीत होता है तो समतुल्यता के आधार पर ही क्योंकि समतुल्यता स्थिति के सन्दर्भ में कुछ ही तत्वों में साम्य रखती है।"

अतः सम्तुल्यता के आधार पर लक्ष्य भाषा का पाठ स्त्रोत भाषा के समतुल्य होता है. समतुल्यता का सिद्धांत अनुवाद की हर प्रकृति पर लागू होता है. जब हम शब्दानुवाद करते है तो उसमें भी कुछ ऐसे शब्द होते है जिनका अनुवाद इस सिद्धांत की सहायता लिए बिना नहीं किया जा सकता . जैसे: a bird's eye view- विहंगम दृष्टि भावानुवाद, अनुवाद की यह प्रकृति पूर्ण रूप से समतुल्यता पर आधारित होती है। मुहावरे, लोकोक्ति आदि का अनुवाद उसके अर्थ के आधार पर नाइडा ने समतुल्यता के आधार पर अनुवाद की दो कोटियाँ बताई हैं। पहला, पाठधर्मी अनुवाद जिसमें शब्द की शब्द के आधार पर वाक्य की वाक्य के आधार पर समतुल्यता स्थापित की जाती है। दूसरा प्रभावधर्मी अनुवाद, इस अनुवाद में स्त्रोत भाषा के पाठक पर पड़ने वाले प्रभावों के समतुल्यता की खोज की जाती है कि वैसा ही प्रभाव लक्ष्यभाषा के पाठ पर पड़ता है या नहीं। डॉ. नगेंद्र ने समतुल्यता चार प्रकार की मानी है-"इस प्रकार कैटफ़र्ड, नाइडा, पोपोविच

द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण में संशोधन करते हुए चार प्रकारों का सुझाव दिया जाता है:

(१)भाषापरक समतुल्यता

(२)भावपरक समतुल्यता

(३)शैलीपरक समतुल्यता

(४)पाठपरक समतुल्यता"

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में भी समतुल्यता के सिद्धांत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस सिद्धांत के आधार पर दो प्रतीक व्यवस्थाओं भाषिक तथा भाषेतर प्रतीक व्यवस्था के बीच समतुल्यता स्थापित की जाती है इस अनुवाद में समतुल्यता का विवेचन विभिन्न सन्दर्भों में किया जा सकता है। जिसमें सामाजिक – सांस्कृतिक संदर्भ, शैलीगत सौन्दर्य और पाठ की विशिष्ट भूमिका समाविष्ट होगी। जब अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद एक साहित्यिक कृति से फिल्मांकन रूप में किया जाता है तो वहाँ प्रभाव्दाहर्मिता पर आधिक बल दिया जाता है। जो प्रभाव उपन्यास या साहित्य अपने पाठक पर छोड़ता है क्या वहीँ प्रभाव फिल्मांकन भी छोड़ता है या नहीं? साहित्यिक कृति भावों और विचारों की समग्रता है जिसमें प्रतीक विधान, बिम्ब विधान, सूक्ष्म अर्थवत्ता, व्यंग्यार्थ आदि अन्तर्निहित होंगे। इन सब का अंतरण नए प्रतीकों या फिल्मांकन में करते समय समतुल्यता के आधार को लिया जाता है। अतः पिंजर के फिल्मांकन को हम समतुल्यता की दृष्टी से परख सकते हैं।

सम्प्रेषण का सिद्धांत

सम्प्रेषण अनुवाद प्रक्रिया का महत्वपूर्ण पक्ष होता है। इसी प्रक्रिया में अनुवाद मूल कृति के कथ्य को उसी के समानांतर वैसी ही प्रभावशाली भाषा शैली में व्यक्त करने की चेष्टा करते हैं। सम्प्रेषण सिद्धांत के आधार पर अनुवादक ये पता लगाता है कि लक्ष्य भाषा के पाठक को सामान्य रूप से किन तत्वों का ज्ञान हो सकता है और कितने तत्व ऐसे हैं जो उसके सामान्य ज्ञान की परिधि से बाहर हैं यह सामान्य ज्ञान अनूदित सन्देश की ग्रहिता की अपनी भाषा की

प्रकृति पर निर्भर करता है।

अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद तथा इसमें भी विशेषकर फिल्मांकन में सम्प्रेषण के सिद्धांत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक फिल्मकार दर्शक वर्ग को किन तत्वों का ज्ञान हो सकता है दर्शक वर्ग की संस्कृति मूल कृति की संस्कृति से कितनी मिलती जुलती है यह भी यहाँ देखने योग्य है। अमुक रचना का सम्प्रेषणपरक विवरण क्या है? इसी से अनूदित फिल्मांकन की विशेषताओं का निर्धारण किया जा सकता है। अतः अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद को तीनों सिद्धांतों के आधार पर देखा जा सकता है। हालाँकि इसका कोई एक स्वतंत्र सिद्धांत नहीं है, ये सभी सिद्धांत एक-दूसरे के पूरक हैं।

1.2 साहित्य और सिनेमा

एक स्थिर दृश्य की अपेक्षा गतिशील दृश्य दर्शक को जीवंत लगता है। गतिशीलता दर्शक को सम्मोहित कर लेती है। आँखों से देखे हुए दृश्य अधिक सच्चे लगते हैं। सिनेमा में गति के गुण को पकड़ पाने तथा उसे पूरी निपुणता के साथ व्यक्त करने की क्षमता होती है। गति के यही तत्व दृश्य भाषी का निर्माण करते है। सिनेमा की ये गतिकीय विशेषताएँ इसको लोगों के अधिक नजदीक लाती हैं क्योंकि लिखित शब्द के साथ तो ये गुण भौतिक रुप से बिल्कुल नदारद है। इसी कारण लिखित शब्द को गतिशील दृश्य भाषा ने बहुत बड़ी चुनौती दी है। परंतु साहित्य के सामने सिनेमाई विधा बिल्कुल नन्हें पौधे के समान है। सिनेमा में जहाँ नाटक से बहुत कुछ लिया वहाँ उपन्यास व कहानियों ने भी अपनी उपलब्धियों से सिनेमा की झोली भर दी।

समाज के चौमुखी विकास में साहित्य की अपनी भूमिका होती है। साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। सिनेमा भी समाज से गहरे रुप से जुड़ा हुआ है। यहाँ आकर दोनों के उद्देश्य कहीं न कहीं मिल जाते है। आधुनिक समय में सिनेमा जीवन का हिस्सा है जिसे हम जनसमुदाय से अलग नहीं कर सकते हैं। भारत में सिनेमा और साहित्य पर संभवत:बहुत कम विचार हुआ है। पश्चिम में इस पर बहुत विचार हुए है। हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान में ही देख लीजिए, पाकिस्तान

में टेलीविजन धारावाहिकों की तुलना में कमजोर और नीरस पाया जाता है। एक जमाने में भारतीय साहित्य के लेखक फिल्म विधा के प्रति आकर्षित हुए थे परंतु वह इस दुनिया में पैर न जमा पाए।

साहित्यकार का फिल्म के लिए लिखना एक अलग बात है तथा साहित्य का चयन करके उस पर निर्देशक द्वारा फिल्म बनाना बिल्कुल अलग है। साहित्य यदि फिल्म को ध्यान में रखकर लिखा जाता है तो यह पूरी तरह साहित्य नहीं रह जाता परंतु सिनेमा के साथ ऐसा नहीं है। सिनेमा साहित्य को कई आधार बनाता है। गुलशन नंदा के कई उपन्यासों जैसे नीलकमल, झील के उस पार आदि पर फिल्में बनी हैं और सफल भी रहीं है परंतु गुलशन नंदा को सामान्यत: साहित्यकार नहीं माना जा सकता। उसी तरह आज के दौर के अंग्रेजी उपन्यासकार चेतन भगत हैं। जिनके उपन्यासों पर फिल्में बन रही हैं। जो दर्शक वर्ग तथा सामान्य पाठक वर्ग दोनों में प्रिय हैं उनके उपन्यास पर थ्री इडिएट, टू स्टेटस बनी हैं पर वह भी साहित्यकार रुप में ख्याति प्राप्त लेखक नहीं है।

"एक संवेदनशील पाठक श्रोता एवं दर्शक होने के नाते हमने यह अनुभव भी किया है कि इनमें से प्रत्येक विधा में सहृदय के मन और मस्तिष्क को स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता होती है। इन कलाओं का पारस्परिक संयोगऔर समन्वय जिस सीमा तक बढ़ता चला जाता है, उसकी प्रभाव क्षमताभी उतनी ही बढ़ती चली जाती है, इसलिए यदि गीत के साथ संगीत का समन्वय हो या फिर गीत और संगीत के साथ नृत्य का भी समन्वय हो तो अन्तर्मन के तारों को उतना ही अधिक झंकृत करता है।"[16]

इस प्रकार से हम कह सकते है कि दो कलाओं के समन्वय या साहित्य का सिनेमा में प्रतीकात्मक अनुवाद दुगुना प्रभाव छोड़ेगा बजाए साहित्य के या सिनेमा के तथा दर्शक व पाठक को साधारणीकरण तक ले जाते हैं।

[16] शरीफ मोहम्मद, संवेग पत्रिका, अंक 84, पृ. 248

फिल्म निर्माताओं के लिए साहित्य को फिल्म में रूपान्तरित करना चुनौती पूर्ण कार्य है। संवाद, भाषा, पहनावा, संस्कृति, कथानक आदि के चलते साहित्य की उस रचना में कुछ परिवर्तन करने के पश्चात् ही उसे फिल्म का रूप दिया जाता है। जब किसी भी रचना का रूपान्तरण किया जाता है तो उसमें कुछ बदलाव आना स्वाभाविक है। फिल्म निर्माताओं द्वारा साहित्य की किसी विधा को फिल्म में रूपान्तरित करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि फिल्म दर्शकों की रुचिनुसार बने, इस कारण उनके द्वारा वास्तविक रचना के कुछ अंशों में परिवर्तन कर उसे नये अंदाज में प्रस्तुत किया जाता है।

आज तक साहित्य पर बनी सभी फिल्मों को दर्शकों द्वारा सराहा गया है। साहित्य की गुमनाम रचनाओं को हर तबके के लोगों तक पहुँचाने का श्रेय सिनेमा को ही जाता है। वैसे तो साहित्य केवल बुद्धिजीवियों या किसी वर्ग विशेष को ही अपनी ओर आकर्षित करता है परन्तु साहित्य का फिल्म में रूपान्तरण होने पर आज रिक्शेवाला और ठेलेवाला जिन्हें साहित्य के अर्थ तक का पता नहीं है, वे भी साहित्यकारों की कल्पनाओं से अवगत हो पाये हैं। साहित्य की बडी-बडी पुस्तकें जो आम आदमी की पहुँच से दूर हैं, वही साहित्य की पुस्तकें अगर फिल्म में रूपान्तरित हो जाए तो आम आदमी के लिए मनोरंजन का पसंदीदा साधन है। फिल्म निर्माताओं के लिए एक लम्बे चौडे उपन्यास को तीन चार घण्टे की फिल्म में रूपान्तरित करना एक चुनौती पूर्ण कार्य है फिर भी दर्शकों तथा फिल्म निर्माताओं ने फिल्म निर्माण के लिए साहित्य को पहली पसंद माना है। सिनेमा का भविष्य साहित्य व साहित्यकारों से सदैव प्रेरित होता रहेगा।

श्रेष्ठ साहित्य पर श्रेष्ठ फिल्में बनाई जा सकती हैं परंतु कुछ आवश्यक तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। फिल्म एक सामूहिक विधा है। वह साहित्य की तरह एक व्यक्ति की कला पर आधारित नहीं है। इसमें संवादलेखक, गीतकर संगीत, निर्देशक, छायाकार यहाँ तक संपादक की भी अपनी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। नायक नायिका की भी अपनी सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होती है जो अप्रत्यक्ष रूप से चरित्र पर अपना प्रभाव डालती है।

इसके साथ ही फिल्म को दर्शक वर्ग भी प्रभावित करता है। इसका दर्शक वर्ग निश्चित नहीं होता, जिस प्रकार अन्य विधाओं में निश्चित होता है जैसे चित्रकला की प्रदर्शनी को चित्रकला प्रेमी ही अधिक देखेने आते हैं परंतु सिनेमा का दर्शक युवा वृद्ध, शिक्षित अशिक्षित, ग्रामीण

शहरी कोई भी हो सकता है। नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि ने नाटक के प्रेक्षक निर्धारित किए थे जिसमें सामान्य मानव को महत्ता मिली थी परंतु अभिनव गुप्त के समय तक आते-आते नाटक के प्रेक्षक अभिजात्य वर्ग हो गए थे। आज आधुनिक दौर में सिनेमा के विकास के बाद फिर से दर्शक सामान्य वर्ग के ही अधिक होते हैं।

साहित्य पर बनी फिल्मों को दर्शकगण स्वीकार करेगा या नहीं इस पर संदेह सदैव बना रहता है। हिंदी के कई साहित्यकारों के साहित्य पर बनी फिल्में निर्मित हुई हैं तथा अधिकांशत: उपन्यास पर फिल्में अधिक निर्मित हुई है-

" सिनेमा पंडितों का मत है कि उपन्यास में आख्यान कथ्य की वृतांतपूर्वक कहने की जो विशेषता है वह सिनेमाई भाषा के साथ मेल खाती है। सिनेमाई भाषा का भी यह स्वरुप विशेष अर्थ रखता है। साथ ही उपन्यास में वर्णित समय और उसके फैलाव को समेटने और फैलाने की जो लचक है, वह सिनेमाई भाषा को सुविधा प्रदान करती है। इसके अलावा, इसके कथ्य को संवादों के माध्यम से संप्रेषित करने की सुविधा रही है।"[17]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सिनमा ने नाटक की अपेक्षा उपन्यास से बहुत कुछ लिया है। बंगाल के साहित्यकार शतरचंद्र के देवदास उपन्यास पर तीन फिल्में बनी हैं। विमलराय के द्वारा निर्देशित दूसरी देवदास (1955) अधिक सफल हुई बजाए 1935 की देवदास से जिसका निर्देशन बरुआ जी ने किया। हिंदी में प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान', कहानी 'मिल मजदूर' और 'शतरंज के खिलाड़ी' पर फिल्में बनी हैं। मुक्तिबोध की कहानी 'सतह से उठता हुआ आदमी' का भी अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद फिल्म माध्यम में हुआ है। परंतु यह फिल्में उपन्यास व कहानी जितनी सफल नहीं हुई।

इसी तरह भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास चित्रलेखा पर फिल्म बनी। महाश्वेता देवी की कहानी पर आधारित 'रुदाली' फिल्म भी चर्चित रही और चली थी। साहित्य और फिल्म के अंत:

[17] प्रो. किशोर वासवानी, अनुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ, सं. डॉ. गोस्वामी व डॉ. श्रीवास्तव, ओलख प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 100

संबंधों को किसी न किसी रूप में निर्धारित और प्रभावित करेंगे। साहित्य पर आधारित पटकथा साहित्य की परिधि में रहकर ही लिखी जाती है। मूलकथा कभी-कभी वर्णनात्मक होती है। जैसे 'पाथेर पंचावली' और 'तमस' को उपन्यास की दृष्टि से इनमें वर्णनात्मक पर अधिक बल है लेकिन उसमें निहित विचार या कथानक इतना उत्कृष्ठ हो सकता है कि उससे प्रेरित होकर फिल्मकार मूल कृति से बेहतर फिल्म निर्माण कर सके। कई बार मूलकृति फिल्मकार के अभिव्यक्ति व अनुभव से संचालित होती है।

'फिल्मकार फिल्म बनाते हुए मूल रचना पर अपना 'पाठ' आरोपित कर देता है। यह अनजाने में भी हो सकता है। शरतचंद्र के उपन्यासों में भी हो सकता है। शरतचंद्र के उपन्यासों को लेकर विमलराय ने कई फिल्में बनाई लेकिन प्राय: देखा गया कि स्त्री के प्रति विमलराय का नजरिया उपन्यासकार की तुलना में अधिक परंपरागत और आदर्शवादी है। देवदास, पार्वती और चंद्रमुखी में इसे साफ तौर पर देखा जा सकता है।'

इसी प्रकार अम्रता प्रीतम के पिंजर उपन्यास में हम देख सकते हैं कि पुरो जिसकी उम्र उपन्यास में 14 वर्ष बताई गई है फिल्म में उसकी उम्र 19 या 21 साल के लगभग दिखाई पड़ती है। यहाँ पर दर्शक वर्ग को आकर्षित करने हेतु ऐसा प्रतीक का गठन किया गया क्योंकि जिस त्रासदी को पढ़कर पाठक यह आभास करता है वहीं आभास वह दर्शक फिल्म में 14 वर्ष की पूरों को देखकर नहीं कर पाएगा।

अंत: साहित्य और सिनेमा में बहुत गहरा संबंध है तथा इनके बीच सेतु का कार्य अनुवाद कर रहा है। आज अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद के कारण ही साहित्यिक कृतियाँ एक बड़े दर्शक वर्ग तक पहुंच पा रही हैं। कई ऐसी साहित्यिक कृतियाँ है जो समाज में क्रांति के लिए लिखी गई है तथा समाज का कटु सत्य दर्शाती है. आज उन पर भी अनुवाद का सहारा लेकर फिल्में बनाई जा रही है ताकि वह साधारण जन समुदाय तक पहुंच पाए। इसका एक ज्वलंत उदाहरण है - काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'काशी का अस्सी' पर चंद्रप्रकाश द्विवेदी जी के निर्देशन में बनी 'मोहल्ला अस्सी' फिल्म जो वास्तविकता का दर्शन कराती है शायद इसलिए सरकार द्वारा इस पर प्रतिबंध लगाया गया है। इसी प्रकार की फिल्म हैं 'मांझी' जो दशरथ मांझी पर बनी है। अत:

साहित्य और सिनेमा अनुवाद की सहायता से समाज को बदलने का बल रखते है।

1.3 अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद मूल्यांकन के आधार (फिल्मांकन विशेष संदर्भ में)

एक सदी से फिल्म कला का एक सशक्त माध्यम तथा एक मनोरंजन के माध्यम के रुप में विद्यमान है। सामाजिक सोद्देश्यता तथा कलात्मक उत्कृष्टता पर आधारित फिल्में बनी हैं परंतु उससे कहीं ज्यादा फिल्में केवल मनोरंजन के मकसद को लिए हुए है। साहित्यक कृतियाँ फिल्मों के लिए हमेशा प्रेरणा स्रोत रही हैं।

जीवन का यथार्थवादी चित्रण, विभिन्न पात्रों का बाहरी और आंतरिक द्वन्द्व, नाटकीयता शैली के साथ-साथ बिम्ब और प्रतीक जैसे काव्यात्मक उपकरण फिल्म को साहित्य के नजदीक लाते हैं परंतु कई ऐसे उपकरण हैं जो फिल्म तथा साहित्य के अपने-अपने विशिष्ट होते हैं। हम साहित्य पर आधारित फिल्म का विश्लेषण करेंगे तो हम देखेंगे कि कई ऐसे उपकरण हैं जो दोनों की अभिव्यक्ति के साधन को बदलते हैं। भावार्थ एक ही होता है परंतु अभिव्यक्ति की शैली बदल जाती है। यहीं अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद है। इस अनुवाद में अनूदित रचना कई बार मूल से कहीं उच्च स्तर की साबित होती है। उच्च स्तर में यहाँ अर्थ है - अभिव्यक्ति की ऊँचाई। एक उपन्यास को अधिकतर एक साहित्य प्रेमी या शिक्षितवर्ग ही पढ़ता है परंतु जब उसी उपन्यास का अर्थ फिल्म में होता है तो वह एक बड़े जन समुदाय तक पहुँचता है। पाठक वर्ग से दर्शक वर्ग में परिवर्तन हो जाता है। इस अनुवाद के मूल्यांकन के लिए पहला आधार यही है।

पाठक वर्ग से दर्शक वर्ग का बदलता स्वरूप :-

पाठक वर्ग एक सीमित जन का समूह होता है जो शिक्षित या अर्धशिक्षित वर्ग के कुछ भाग से बनता है के साथ ही पाठक वर्ग में सभी पाठक सभी लेखकों को पढ़ें या पसंद करें ऐसा आवश्यक नहीं। पाठक वर्ग साहित्यिक भाषा, अलंकारादि समझने योग्य होता है पाठक वर्ग में

जरूरी नहीं कि रचना से सभी आत्मसात् कर पाए परंतु दर्शक वर्ग का कुछ ही भाग आत्मसात नहीं कर पाता।

इस प्रकार जब फिल्म में किसी रचना का अनुवाद होता है तो एक अच्छे अनुवाद की परख इस बात से भी लगाई जा सकती है कि फिल्म कितनी टिकी। उसने दर्शक को किस प्रकार आकर्षित किया। दर्शक वर्ग में उसको लेकर एक अलग चेतना आई या नहीं।

शैली के आधार पर भी हम फिल्म तथा उपन्यास की तुलना कर सकते हैं। किसी भी रचना की एक विशिष्ट शैली होती है और उसी तरह फिल्म की भी अपनी एक विशिष्ट निर्देशन शैली है। इसलिए उपन्यास तथा फिल्म की शैली को समझकर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है कि क्या फिल्म अपनी शैली का उपयोग करके मूल तक पहुँच पाई है- "**अपनी शैली निश्चित करने की प्रक्रिया में फिल्म निर्देशक विशेष शूटिंग स्थान (Location), विशेष प्रकाश-व्यवस्था, विशेष छायांकन, विशेष संपादन पद्धति (cutting loatiern), विशिष्ट अभिनय आदि की कल्पना करता है जिसमें निर्देशक के अंतर्मन में छिपी सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है जो उसको एक रचनात्मक कलाकार (creative artist) बनाती है।**"[18]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शैली फिल्म में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रकाश व्यवस्था, छायांकन, शूटिंग स्थान आदि उपकरण का प्रयोग भावार्थ के लिए स्पष्टीकरण किया जाता है।

पाठक एवं रचनाकार के बीच शब्द एक पुल का कार्य करते हैं जबकि नायक या फिल्म निर्माण के लिए लिखित शब्द इस कल्पनात्मक उड़ान का मात्र प्रथम बिंदु है और इस कल्पना को साकार करने के लिए कलाकारों का अभिनय, संवाद, मंच सज्जा, विशेष प्रकाश-व्यवस्था, पार्श्व का होना आवश्यक है। मूल्यांकन के लिए साहित्य पर आधारित फिल्म की पटकथा में निम्नलिखित तत्व हैं जिनके आधार पर हम किसी फिल्म तथा साहित्य खास तौर पर उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन विवेचन कर सकते हैं।

[18] सिंह कुलदीप, फिल्म निर्देशन, 2007, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 47

समय संयोजन :-

ये पटकथा का पहला घटक हैं। पृष्ठों में गिने जानेवाले साहित्य को दो से ढाई घंटे के अंतराल में बांधना होता है जिसके लिए कई अनावश्यक संवाद निर्देशक छोड़ देता है। **"पटकथा लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक दृश्य का एक-दूसरे से कथात्मक, भावनात्मक तथा समयात्मक संबंध हों और इनमें तीनों तत्वों की निरंतरता बनी रहे। दृश्य की आवश्यकता के अनुसार समय को कम या अधिक किया जा सकता है।"**[19]

इस प्रकार से समय संयोजन को विश्लेषित करके अनूदित कृति को मूल्यांकित किया जा सकता है। यह भी ध्यान देने योग्य होगा कि समय के अभाव में कौन-कौन से संवाद या दृश्य छोड़ दिये गये है और इससे मूल के भावार्थ को ठेस तो नहीं पहुँची।

कथावस्तु :-

कथावस्तु (Theme) का मौलिक होना अनिवार्य नहीं है जितना उसकी ईमानदार अभिव्यक्ति है। कथावस्तु में निरंतर प्रवाह आवश्यक है। कथावस्तु चरित्र तथा मूल समस्या को विकसित करने वाली होनी चाहिए।

"फिल्म की कहानी का आरंभ चाहे किसी छोटे से कथासूत्र, विचार या किसी संपूर्ण कहानी अथवा उपन्यास से हो, पटकथा लेखन के अंत में पहुँचते-पहुँचते परिवर्तन की एक श्रृंखला बन जाती है। ये सभी परिवर्तन दर्शकों की रुचि देखकर ही किये जाते हैं।"[20]

यहीं परिवर्तन विश्लेषण का विषय बनते हैं कि कहाँ तक अनूदित कृति मूल के निकट रह पा रही है हालांकि अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद में अनुवादक को अपेक्षाकृत अधिक छूट की आवश्यकता होती है।

[19] सिंह कुलदीप, फिल्म निर्देशन, 2007, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 88

[20] सिंह कुलदीप, फिल्म निर्देशन, 2007, राधाकृष्ण प्रकाशन पृष्ठ 90

कथावस्तु को व्यक्त करने वाले 'गीत', 'सामाजिक सांस्कृतिक शब्दावालियाँ' आदि के आधार पर भी मूल्यांकन किया जा सकता है।

पात्र व चरित्र-चित्रण -

पात्र तथा चरित्र-चित्रण के विकास की फिल्म की एक विशिष्ट शैली होती है जो उपन्यास से भिन्न होती है। यहाँ विश्लेषित करना पड़ता है कि पात्र उपन्यास के ही है या अलग है तथा उनका चारित्रिक विकास उस तरह हो पाया है जिस प्रकार एक साहित्यकार ने किया है।

संवाद -

संवाद फिल्म का आधार है। संवादों के बिना फिल्म की कल्पना नहीं की जा सकती है। एक साहित्य में संवाद अलग-अलग विधा में अलग-अलग विशेषता लिए होते है। फिल्म में संवाद छोटे और आकर्षक होने चाहिए। ये भावनात्मक तथा दृश्यात्मक अभिव्यक्ति के विस्तार के रुप में होना चाहिए। फिल्म के संवादों की भाषा सामान्यत: सीधी और सरल होती है।

उपन्यास में साहित्यिकता होती है। उपन्यास में संकेतों को लिखित शब्दों में लिपिबद्ध किया जाता है। जैसे 'घोड़े दौड रहे हैं।' इस औपन्यासिक पंक्ति को फिल्म में घोड़े के दौड़ते पैर तथा नाल की खटखट की ध्वनि से ही काम चला जाता है। अंत: उपन्यास से ऐसी पंक्तियां हटाने की छूट निर्देशक को मिल जाती है। इन्हीं आधारों पर तुलनात्मक अध्ययन द्वाराअनूदित फिल्म का विश्लेषण कर सकते हैं कि कहां तक वह मूल के निकट है तथा कहाँ तक वह साहित्यिकता को बरकरार रखा रहा है।

"अधिकांश साहित्यकार व फिल्मकार प्रकाशित साहित्य पर फिल्म बनाने और बनवाने से कतराते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि साहित्यकार अपने साहित्य की मूल भावना से कोई खिलवाड़ नहीं करना चाहता जबकि फिल्मकार के लिए उस रचना को फिल्म के लिए परिवर्तित करना आवश्यक होता है। जब निर्देशक किसी साहित्यिक रचना पर कार्य कर रहा हो तो उसे अधिक सावधान, संवेदनशील तथा निर्णायक होना चाहिए ताकि मूल लेखक की भावनाओं का अपमान न हो और फिल्म की

आवश्यकतानुसार पटकथा लिखी जा सके।"[21]

किसी भी साहित्य विशेष तौर पर उपन्यास से फिल्म में रूपांतरण में सबसे बड़ी कठिनाई होती है उसका मौखिक साहित्यिक स्वरुप। दृष्य द्वारा हम जिसे एक शॉट में अभिव्यक्त कर सकते हैं, उपन्यास में उसे समझाने के लिए कई पैराग्राफ लिखने पड़ते हैं। अत: फिल्म में सिर्फ संवादों के विवरण को कम करने से काम नहीं चलता। संपूर्ण उपन्यास को दृश्य में पुनर्रचित करना होता है जिसमें समय का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। फिल्म रूपांतरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें संपूर्ण कहानी का नए सिरे से दृश्य रचना करनी होती है। जिसे अधिकांशत: मूल लेखक नहीं पसंद करते।

[21] सिन्हा कुलदीप, फिल्म निर्देशन, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 85